साप्ताहिक
Live not just breaTHE

दि कार्मिक पोस्ट

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/22-23

Email- thekaarmiicpost@gmail.com

Global School Of Excellence, Obedullaganj

वर्ष : 12, अंक : 28 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 8 जुलाई 2026 से 14 जुलाई 2026 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

सुपर अल नीनो से भारत के बिजली क्षेत्र पर बढ सकता है दबाव- रिपोर्ट

नई दिल्ली। एक नए विश्लेषण के अनुसार, अगर इस साल सुपर अअल नीनो की स्थिति बनती है तो भारत के बिजली क्षेत्र पर बड़ा दबाव पड़ सकता है। सेंटर फॉर रिसर्च ऑन एनर्जी एंड क्लीन एयर (सीआरईए) की रिपोर्ट में कहा गया है कि अगले एक साल में देश में लगभग 17.7 टेरावाट-घंटे बिजली उत्पादन की कमी हो सकती है। इस कमी को पूरा करने के लिए भारत को फिर से कोयले से बनने वाली बिजली पर अधिक निर्भर होना पड़ सकता है। इससे कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन भी बढ़ेगा और स्वच्छ ऊर्जा की दिशा में हो रही प्रगति को झटका लग सकता है।

अल नीनो एक प्राकृतिक मौसमीय घटना है। इसमें प्रशांत महासागर के कुछ हिस्सों का समुद्री तापमान सामान्य से अधिक हो जाता है। इसका असर दुनिया के कई देशों के मौसम पर पड़ता है। भारत में एल नीनो के दौरान अक्सर मानसून कमजोर पड़ सकता है, बारिश कम हो सकती है और कई इलाकों में गर्मी बढ़ जाती है। जब एल नीनो बहुत अधिक ताकतवर होता है तो उसे सुपर अल नीनो कहा जाता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि इस बार ऐसा ही मजबूत अल नीनो देखने को मिल सकता है। रिपोर्ट के अनुसार, बढ़ती गर्मी के कारण लोगों को अधिक समय तक एयर कंडीशनर, कूलर और पंखे चलाने पड़ेंगे। इससे बिजली की मांग तेजी से बढ़ सकती है। केवल ठंडक के लिए बिजली की अतिरिक्त जरूरत लगभग 10 टेरावाट-घंटे तक पहुंच सकती है। दूसरी ओर, कम बारिश और कमजोर हवाओं के कारण जलविद्युत और पवन ऊर्जा का उत्पादन भी घट सकता है। ऐसे में बिजली की

मांग और उत्पादन के बीच बड़ा अंतर पैदा होने की आशंका है। यदि नवीकरणीय स्रोतों से पर्याप्त बिजली नहीं मिलती है तो इस कमी को पूरा करने के लिए कोयला आधारित बिजली संयंत्रों का उपयोग बढ़ाना पड़ सकता है। रिपोर्ट का अनुमान है कि इससे लगभग 1.7 करोड़ टन अतिरिक्त कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन हो सकता है। यदि स्थिति और गंभीर हुई तो कोयले से बनने वाली अतिरिक्त बिजली 24 टेरावाट-घंटे तक पहुंच सकती है। इससे प्रदूषण बढ़ने के साथ-साथ जलवायु परिवर्तन की चुनौती भी और गंभीर हो सकती है। भारत में पिछले कुछ वर्षों से बिजली की मांग लगातार बढ़ रही है। इसकी वजह तेज आर्थिक विकास, शहरों का विस्तार, उद्योगों की बढ़ती जरूरत और घरों में एयर कंडीशनर का बढ़ता उपयोग है। हाल के वर्षों में भीषण गर्मी के कारण बिजली की अधिकतम मांग नए रिकॉर्ड बना चुकी है। इस साल भी देश में बिजली की मांग 270 गीगावाट तक पहुंच गई थी। विशेषज्ञों का कहना है कि आने वाले वर्षों में गर्मी और बढ़ने पर बिजली की मांग में और तेजी आ सकती है। रिपोर्ट में कहा गया है कि सौर ऊर्जा पर एल नीनो का असर जलविद्युत और पवन ऊर्जा की तुलना में काफी कम पड़ता है। भारत में अब दिन के समय बिजली की लगभग 24 प्रतिशत जरूरत सौर ऊर्जा से पूरी हो रही है। पिछले साल देश ने 44.6 गीगावाट नई सौर क्षमता जोड़ी, जो पिछले वर्ष की तुलना में लगभग दोगुनी थी। इसका असर यह हुआ कि नवीकरणीय ऊर्जा उत्पादन में तेज वृद्धि हुई, जबकि कोयले से बनने वाली बिजली में कमी दर्ज की गई। विशेषज्ञों का कहना है कि केवल सौर और पवन ऊर्जा संयंत्र लगाना ही पर्याप्त नहीं है। सबसे बड़ी जरूरत ऐसी बैटरियों और मजबूत बिजली ग्रिड की है, जो दिन में बनने वाली अतिरिक्त सौर ऊर्जा को संग्रहित कर शाम के समय उपयोग में ला सकें। रिपोर्ट के अनुसार, पिछले साल कुछ स्थानों पर सौर और पवन ऊर्जा उपलब्ध होने के बावजूद उसका पूरा उपयोग नहीं हो सका। यदि पर्याप्त बैटरी भंडारण और बेहतर ग्रिड व्यवस्था होती तो इस ऊर्जा का बेहतर इस्तेमाल किया जा सकता था और कोयले की जरूरत कम पड़ती। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि भारत में अभी भी लगभग 130 गीगावाट नई कोयला आधारित बिजली क्षमता की योजना बनाई जा रही है। विशेषज्ञों का मानना है कि ऐसे संयंत्र बनने में कई वर्ष लगते हैं और भविष्य में स्वच्छ ऊर्जा के बढ़ते उपयोग के कारण उनकी उपयोगिता कम हो सकती है। इसके अलावा कोयला आधारित बिजली संयंत्र तेजी से बदलती बिजली मांग के अनुसार उतनी आसानी से काम नहीं कर पाते, जबकि बैटरियां और आधुनिक ग्रिड अधिक लचीले साबित हो सकते हैं।

असीरगढ़ के आंचल में 30 हजार पलाश बीजों का किया रोपण

बुरहानपुर जिले में जारी पौधारोपण अभियान के तहत रविवार को असीरगढ़ किले के पास इंदौर हाईवे के समीप विशाल पलाश बीजारोपण अभियान आयोजित किया गया। डिप्टी कलेक्टर श्री राजेश पाटीदार के नेतृत्व में आयोजित इस पहल में डिप्टी कलेक्टर श्री भागीरथ वाखला, कृषि उपसंचालक श्री एम.एस. देवके, सहायक आयुक्त जनजातीय कार्य विभाग श्री भरत जांचपुरे, अधिकारियों- कर्मचारियों, शिक्षकों, शासकीय आयुर्वेदिक महाविद्यालय एवं ट्रायम्फल आर्च एकेडमी के लगभग 150 विद्यार्थियों एवं पर्यावरण प्रेमियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। सभी ने मिलकर करीबन 30 हजार पलाश के बीजों का बीजारोपण कर प्रकृति को हरा-भरा बनाने का संकल्प लिया। गेती फावड़े की मदद से गड्ढे किए एवं बीजों का रोपण किया गया। इस अवसर पर डिप्टी कलेक्टर श्री पाटीदार ने पलाश के औषधीय एवं पर्यावरणीय महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि पलाश के बीज प्रकृति के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और अनुकूल परिस्थितियों में भी स्वयं विकसित होकर वृक्ष बन जाते हैं। अभियान के दौरान सभी ने पर्यावरण संरक्षण और पौधों की सुरक्षा का सामूहिक संकल्प लिया। इस अवसर पर प्रतिभागियों ने पिछले वर्ष धूपगट्टा और झिरी की पहाड़ियों पर किए गए बीजारोपण से विकसित लहलहाते पलाश के पौधों को देखकर प्रसन्नता व्यक्त की।

जम्मू-कश्मीर- चिनाब घाटी में आकस्मिक बाढ़ से क्वार जलविद्युत परियोजना ठप, डोडा-किश्तवाड़ हाइवे बंद

ज़म्मू। भारी बारिश के कारण चिनाब घाटी के कई हिस्सों में अचानक आई बाढ़ (फ्लैश फ्लड) ने व्यापक तबाही मचाई। इससे जम्मू कश्मीर के किश्तवाड़ जिले की 540 मेगावाट क्वार जलविद्युत परियोजना का काम गंभीर रूप से प्रभावित हुआ, जबकि डोडा जिले के प्रेम नगर के पास डोडा-किश्तवाड़ राष्ट्रीय राजमार्ग (एनएच-244) भी बंद हो गया।

540 मेगावाट क्वार जलविद्युत परियोजना के टेल रेस टनल (टीआरटी) क्षेत्र में तेज बहाव के साथ आए पानी ने मिट्टी, बड़े पत्थरों और मलबे को परियोजना परिसर में ला पटका, जिससे वहां खड़े कई वाहन मलबे में दब गए। अधिकारियों के अनुसार, इस घटना में किसी भी प्रकार की जनहानि या घायल होने की सूचना नहीं है।

उधर, डोडा के प्रेम नगर के पास फ्लैश फ्लड के कारण भारी मात्रा में मलबा राष्ट्रीय राजमार्ग-244 पर जमा हो गया, जिससे डोडा-किश्तवाड़ मार्ग पूरी तरह अवरुद्ध हो गया। कई वाहन रास्ते में फंस गए और दोनों जिलों के बीच आवाजाही बाधित हो गई। राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण और जिला प्रशासन ने सड़क को जल्द से जल्द चालू करने के लिए मशीनरी और कर्मचारियों को राहत कार्य में लगाया। सोमवार की इन घटनाओं ने चिनाब घाटी में पिछले कुछ वर्षों से चल रही उस बहस को एक बार फिर तेज कर दिया है कि क्या पर्यावरणीय क्षरण, अव्यवस्थित बुनियादी ढांचा विकास और बड़े पैमाने पर हो रही निर्माण गतिविधियां हिमालय जैसे पारिस्थितिक रूप से अत्यंत संवेदनशील क्षेत्र में प्राकृतिक आपदाओं के प्रभाव को और गंभीर बना रही हैं। जम्मू-कश्मीर का पावर हाउस कहे जाने वाले किश्तवाड़ जिले में इस समय कई बड़ी जलविद्युत परियोजनाओं पर काम चल रहा है। इनमें क्वार, पाकल दुल, किरू और रतले परियोजनाएं प्रमुख हैं। इनके साथ-साथ राष्ट्रीय राजमार्ग-244 के चौड़ीकरण और प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (पीएमजीएसवाई) के तहत पर्वतीय क्षेत्रों में अनेक सड़कों के निर्माण और विस्तार का कार्य भी बड़े पैमाने पर जारी है। स्थानीय लोगों का आरोप है कि खुदाई से निकला मलबा पर्यावरणीय दिशानिर्देशों की अनदेखी करते हुए अक्सर प्राकृतिक जल निकासी मार्गों और नदी किनारों के पास डाल दिया जाता है, जबकि नियमों के अनुसार इसे सुरक्षित और निर्धारित डंपिंग स्थलों पर उचित रिटेनिंग संरचनाओं के साथ रखा जाना चाहिए। उनका कहना है कि तेज बारिश के दौरान यही ढीला मलबा बहकर नीचे आता है, जिससे फ्लैश फ्लड की स्थिति और गंभीर हो जाती है तथा नदियों में गाद और तलछट की मात्रा बढ़ जाती है।

संवेदनशील ढलानों के आसपास रहने वाले लोगों का यह भी कहना है कि सड़क निर्माण के दौरान बड़े पैमाने पर पहाड़ काटे गए हैं, लेकिन ढलानों को स्थिर करने और जल निकासी की पर्याप्त व्यवस्था नहीं की गई। उनका दावा है कि इसी कारण विशेषकर मानसून के दौरान भूस्खलन की घटनाएं बढ़ी हैं।

विशेषज्ञ लंबे समय से चेतावनी देते रहे हैं कि हिमालय दुनिया की सबसे नाजुक पर्वतीय पारिस्थितिकी प्रणालियों में से एक है। उनका कहना है कि यदि कठोर पर्यावरणीय सुरक्षा उपायों के बिना अनियंत्रित विकास कार्य किए जाते हैं, तो आपदाओं का जोखिम काफी बढ़ सकता है। जलवायु वैज्ञानिकों का भी मानना है कि बढ़ते तापमान के कारण पूरे हिमालयी क्षेत्र में अत्यधिक वर्षा की घटनाएं अधिक बार हो रही हैं, जिससे मौसम का पारंपरिक स्वरूप लगातार अधिक अनिश्चित होता जा रहा है। पिछले वर्ष किश्तवाड़ जिले के चिशोटी क्षेत्र में हुए बादल फटने की घटना ने भारी तबाही मचाई थी। इस आपदा में मकान, कृषि भूमि, सड़कें और सार्वजनिक बुनियादी ढांचा बुरी तरह क्षतिग्रस्त हुआ था तथा कई लोगों की जान चली गई थी। इस त्रासदी ने पूरे क्षेत्र को झकझोर दिया और यह स्पष्ट कर दिया कि पर्वतीय इलाकों में आपदा प्रबंधन कितनी बड़ी चुनौती बनता जा रहा है।

जुलाई 2021 में किश्तवाड़ जिले के दच्छन के होंजार क्षेत्र में बादल फटने की घटना ने भी भारी तबाही मचाई थी। उस दौरान सड़कें, पुल और मकान बह गए थे तथा जान-माल का भारी नुकसान हुआ था। रामबन जिला भी बार-बार विनाशकारी भूस्खलनों और फ्लैश फ्लड का सामना करता रहा है। विशेष रूप से जम्मू-श्रीनगर राष्ट्रीय राजमार्ग पर भारी बारिश के कारण अक्सर यातायात बाधित होता है, जिससे कश्मीर और देश के बाकी हिस्सों के बीच संपर्क प्रभावित होता है। डोडा जिले में भी लगातार भूस्खलन, ढलानों के धंसने और फ्लैश फ्लड की घटनाएं सामने आती रही हैं, जिनका असर दूरदराज के गांवों, सड़क संपर्क और कृषि भूमि पर पड़ता है।

वन विभाग और निगम का उद्यान विभाग में पौधों को लेकर जोरदार तैयारी

इंदौर। शहर के प्रमुख स्थानों पर इस बार हरियाली और पर्यावरण के लिहाज से लाखों पौधे लगाए जा रहे हैं। इसमें अलग-अलग प्रजातियों के देशी विदेशी पौधे, वन विभाग की नर्सरी के साथ-साथ निगम के उद्यान विभाग द्वारा भी तैयार किए जा रहे हैं। एक तरह से पौधारोपण की शुरुआत तो हो चुकी है लेकिन अभियान अब चलाया जाएगा। इस बार तीन साल के तैयार हो चुके पौधों को लगाने के लिए भी अतिरिक्त तैयारी की गई है।

बताया जा रहा है कि मुख्य रूप से बिजासन माता, मंदिर पितृ पर्वत, बीएसएफ, सिरपुर गार्डन में लाखों पौधे लगाए जाएंगे। दरअसल पिछले दिनों मंत्री कैलाश विजयवर्गीय ने 21 लाख पौधे लगाने के घोषणा की थी और उसी के अनुसार सभी विभागों को पौधारोपण के लिए पौधे तैयार करने के निर्देश दिए थे। वहीं दूसरी ओर बाहरी नर्सरी से भी खासकर विदेशी प्रजातियों के पौधे नगर निगम खरीदने जा रहा है। इस दिशा में भी जल्द काम होगा और सितंबर महीने तक पौधारोपण का अभियान सतत चलाया जाएगा। इसमें मुख्य रूप से जुलाई, अगस्त और सितंबर में अधिक पौधारोपण की योजना बनाई गई है। एक तरह से देखा जाए तो इस महीने भी अभियान में तेजी लाई जा रही है और निगम का प्रयास है कि अधिक से अधिक पौधे लगाए जाएं ताकि पौधारोपण अभियान चल सकें। उद्यान अधिकारी शांतिलाल यादव ने बताया कि नगर निगम की नर्सरी से भी बड़े पैमाने पर पौधे तैयार किए जा रहे हैं। वहीं जिन जिन स्थानों पर अभी पौधे लगाए जा रहे हैं, वहां पर भी भेज दिए हैं।

1.1 ट्रिलियन डॉलर तक पहुंच सकती है जीवाश्म ईंधन को दी जा रही सब्सिडी

मिडिल ईस्ट में भड़के तनाव की चिंगारियों ने दुनिया भर की अर्थव्यवस्थाओं को अपनी चपेट में ले लिया है। हालांकि इसका सबसे ज्यादा असर कमजोर और विकासशील देशों पर पड़ रहा है, जो पहले ही बढ़ते कर्ज और सीमित वित्तीय संसाधनों को लेकर संघर्ष कर रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) की नई रिपोर्ट के मुताबिक, इस भू-राजनीतिक टकराव के चलते कच्चे तेल की कीमतों में आए तेज उछाल ने विकासशील देशों को ऐसे मुश्किल मोड़ पर ला खड़ा किया है, जहां उनके लिए जनता को राहत देने और विकास पर खर्च के बीच संतुलन साधना मुश्किल हो रहा है। हालात ये हैं कि देश अपनी जनता को महंगाई के तात्कालिक झटके से बचाने के लिए अपने सीमित वित्तीय संसाधनों को %जीवाश्म ईंधन सब्सिडी% की भट्टी में झोंकने पर मजबूर हो गए हैं। नतीजतन, बच्चों की शिक्षा, बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं और जलवायु परिवर्तन से जुड़ी दूसरी जरूरी प्राथमिकताओं निपटने के लिए रखा गया बजट स्वाहा हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र की इस ताजा रिपोर्ट, %मिलिट्री एस्केलेशन इन द मिडिल ईस्ट- कुशनिंग द ग्लोबल शॉक% में चेतावनी दी है कि वैश्विक स्तर पर जीवाश्म ईंधन को दी जा रही सब्सिडी को कम करने के जो प्रयास बीते वर्षों में किए गए थे, वे इस युद्ध की भेंट चढ़ चुके हैं। ऐसे में अगर कच्चे तेल की औसत कीमत 88.6 डॉलर प्रति बैरल पर भी थमती है, तो 2026 में दुनिया का जीवाश्म ईंधन सब्सिडी बिल बढ़कर 1.1 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर (करीब 104.9 लाख करोड़ रुपए) के ऐतिहासिक आंकड़े को छू लेगा। यह आंकड़ा बीते साल की तुलना में 41,000 करोड़ डॉलर (39.1 लाख करोड़ रुपए) अधिक है।

इतना ही नहीं, यदि युद्ध की स्थिति और बदतर होती है और तेल की कीमतें 110 डॉलर प्रति बैरल के स्तर पर पहुंचती हैं, तो यह बोझ 1.43 ट्रिलियन डॉलर (करीब 136.3 लाख करोड़ रुपए) के विनाशकारी स्तर पर पहुंच सकता है, जो दुनिया की कई उभरती अर्थव्यवस्थाओं की कमर तोड़ देगा।

रिपोर्ट में स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि कमजोर और मध्यम आय वाले देशों ने तेल की बढ़ती कीमतों के असर से लोगों को बचाने के लिए जीवाश्म ईंधन पर सब्सिडी, कीमतों पर नियंत्रण, कर में छूट और खपत घटाने जैसे कदम उठाए हैं। इन उपायों से लोगों को फिलहाल कुछ राहत जरूर मिली है, लेकिन इसकी आर्थिक कीमत बहुत बड़ी है। यूएनडीपी के प्रशासक अलेक्जेंडर डी क्रू का कहना है, मडिल ईस्ट संकट का यह वैश्विक असर न केवल बेहद गहरा है, बल्कि इसके परिणाम लंबे समय तक भुगतने होंगे। उनके मुताबिक, कई विकासशील देश पहले ही कर्ज के बोझ तले दबे हैं, फिर भी ये देश इस ऊर्जा संकट से अपनी जनता को बचाने के लिए जो अस्थाई तौर पर जो कुछ कर सकते हैं, वो कर रहे हैं। लेकिन इसकी एक छिपी हुई कीमत है, आज के संकट को टालने के लिए सरकारें अपने कल के भविष्य का सौदा कर रही हैं। जो पैसा नए स्कूल, अत्याधुनिक अस्पताल और साफ-सुथरे ऊर्जा संयंत्र बनाने में इस्तेमाल होना चाहिए था, वह सिर्फ डूबती अर्थव्यवस्थाओं की सांसें चालू रखने के लिए ईंधन में फूंका जा रहा है। ऐसे में बिना किसी अंतरराष्ट्रीय सहयोग के ये देश इस सदमे से उबर नहीं पाएंगे और यह रिकवरी सीधे तौर पर उनके भविष्य के विकास की कीमत पर हो रही है। रिपोर्ट के मुताबिक, यह संकट ऐसे समय में सामने आया है जब दुनिया के करीब आधे सबसे कमजोर देश पहले ही कर्ज के भंवर जाल में फंसे हैं या बेहद जोखिम भरे दौर से गुजर रहे हैं। विकासशील देशों की स्थिति यह हो चुकी है कि इस साल उन्हें अपनी कुल सरकारी आय का औसतन 9.53 फीसदी हिस्सा केवल पुराने कर्ज का ब्याज चुकाने में गंवाना पड़ेगा। यह हिस्सा बीते एक दशक की तुलना में दोगुना और पिछले 25 वर्षों में ब्याज भुगतान का सबसे उच्चतम स्तर है। वहीं, 2024 से 2026 के तीन साल के औसत के आधार पर 55 विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के अपनी आय का 10 फीसदी से ज्यादा हिस्सा केवल ब्याज भुगतान पर खर्च करने का अनुमान है। एक दशक पहले ऐसे देशों की संख्या महज 32 थी। यह दिखाता है कि आर्थिक दबाव कितनी तेजी से बढ़ा है। ऐसे में संयुक्त राष्ट्र ने आगाह किया है कि ईंधन पर दी जा रही यह भारी सब्सिडी भले ही आम जनता को कुछ समय के लिए राहत दे रही हो, लेकिन यह अंततः देशों को अत्यधिक कार्बन उत्सर्जन वाले पुराने ढर्रे पर ही लॉक कर देगी और भविष्य में पर्यावरण अनुकूल निवेश के सारे रास्ते बंद हो जाएंगे। यूएनडीपी प्रशासक ने स्पष्ट किया कि किसी भी देश को उस संकट की इतनी बड़ी कीमत नहीं चुकानी चाहिए जिसे पैदा करने में उसका कोई हाथ नहीं था। उनके अनुसार, सबसे पहले बहुपक्षीय वित्तीय सहायता को इस तरह उपलब्ध कराना होगा कि कमजोर और मध्यम आय वाले देशों के लिए उसे हासिल करना आसान हो। दूसरा, अक्षय ऊर्जा में निवेश तेज करना होगा, क्योंकि स्वच्छ ऊर्जा में हर निवेश भविष्य के ऐसे झटकों से सुरक्षा देता है। साफ है कि मिडिल ईस्ट का यह संकट सिर्फ तेल की बढ़ती कीमतों का संकट नहीं, बल्कि विकासशील देशों के भविष्य पर मंडराता दोहरा खतरा है, एक ओर जनता को तत्काल राहत देने की मजबूरी, तो दूसरी ओर शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छ ऊर्जा जैसे बुनियादी निवेशों में लगातार आ रही गिरावट।

एक पेड़ पर्यावरण के लिए, एक पेड़ भविष्य के लिए-पुष्प ग्रुपद्वारा फलदार वृक्षों का रोपण

इंदौर। पर्यावरण संरक्षण के प्रति जनजागरण और हरित भविष्य के संकल्प के साथ दिगंबर जैन सोशल ग्रुप पुष्प द्वारा दिगम्बर जैन सोशल ग्रुप फेडरेशन द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर मनाए जा रहे पर्यावरण माह अभियान के अंतर्गत इंदौर शहर की आस्था का केंद्र खजराना गणेश मंदिर परिसर में विशेष वृक्षारोपण कार्यक्रम आयोजित किया गया। ग्रुप सचिव रितेश जैन ने बताया कि वृक्षारोपण कार्यक्रम में फेडरेशन के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री मनोहर झांझरी की विशेष उपस्थिति रही। इस अवसर पर ग्रुप अध्यक्ष श्री मयंक काला, निवर्तमान अध्यक्ष श्री गिरीश रारा, श्री अतुल गोयल, अजय जैन ,फेडरेशन के निवर्तमान अध्यक्ष श्री राकेश कल्पना विनायका तथा श्री आशीष सूतवाला सहित ग्रुप के अनेक सदस्य उपस्थित रहे। कार्यक्रम के दौरान सभी सदस्यों ने पर्यावरण संरक्षण का संकल्प लेते हुए कहा कि एक पेड़ पर्यावरण के लिए, एक पेड़ भविष्य के लिए अवश्य लगाएं। योगेश जैन ,प्रवीण प्रीति जैन ,अखिलेश रश्मिता जैन , विशाल दीपमाला जैन ,जम्बू शाह , डॉक्टर मनीष जैन , करण मल जैन ,राकेश मीना जैन , प्रशांत छाबडा,सुषमा जैन ,सुरभि जैन , ने कहा कि वृक्षारोपण केवल एक अभियान नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों को स्वच्छ, हरित और सुरक्षित पर्यावरण देने की सामूहिक जिम्मेदारी है। अंत में उपस्थित सभी सदस्यों ने अधिक से अधिक वृक्ष लगाने एवं उनके संरक्षण का संकल्प लिया।

वैज्ञानिकों का दावा- हमारी सोच से कहीं पहले लग चुकी थी ओजोन परत में सेंध

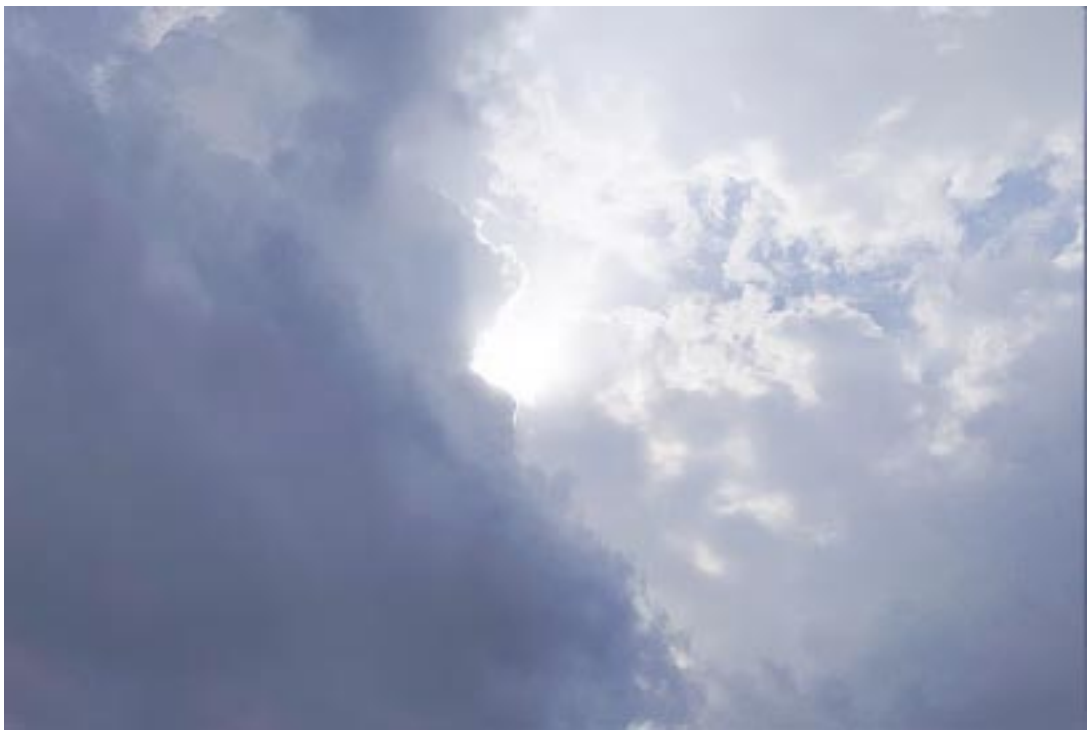

मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एमआईटी) के नए अध्ययन के मुताबिक, अगर आज जैसी उन्नत निगरानी तकनीकें पिछली सदी के मध्य में उपलब्ध होतीं, तो वैज्ञानिक 1957 में ही ओजोन क्षरण के शुरुआती संकेत पकड़ सकते थे, यानी 1985 में अंटार्कटिका के ऊपर 'ओजोन छिद्र' की खोज से करीब 30 साल पहले। अध्ययन में सबसे चौंकाने वाला खुलासा यह है कि शुरुआती नुकसान के पीछे क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सीएफसी) नहीं, बल्कि कार्बन टेट्राक्लोराइड नाम का औद्योगिक रसायन था, जिसका इस्तेमाल 1930 के दशक से ड्राई-क्लीनिंग और मशीनों की सफाई में होता रहा।

वैज्ञानिकों ने कंप्यूटर मॉडलों, औद्योगिक उत्सर्जन के ऐतिहासिक आंकड़ों और आइस कोर नमूनों के आधार पर पाया कि ओजोन क्षरण का पहला स्पष्ट संकेत अंटार्कटिका में नहीं, बल्कि उष्णकटिबंधीय क्षेत्र के ऊपरी समताप मंडल में उभरा था।यह शोध सिर्फ अतीत का नया सच सामने नहीं लाता, बल्कि चेतावनी भी देता है कि पर्यावरणीय संकट अक्सर हमारी नजरों में आने से बहुत पहले शुरू हो जाते हैं। ऐसे में मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल जैसी सफल पहलों के बावजूद, ओजोन परत की लगातार निगरानी और वैश्विक सतर्कता अब भी उतनी ही जरूरी है।धरती के ऊपर पसरी ओजोन परत को अक्सर एक अदृश्य ढाल कहा जाता है। यही ढाल सूरज की खतरनाक पराबैंगनी किरणों को रोककर पृथ्वी पर जीवन की रक्षा करती है। लेकिन अब एक नई स्टडी ने इस अदृश्य सुरक्षा कवच की कहानी को और ज्यादा असहज और चिंताजनक बना दिया है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि ओजोन परत को नुकसान 1985 में अंटार्कटिका के ऊपर ओजोन छिद्र% की खोज से बहुत पहले ही शुरू हो चुका था। उनके मुताबिक, ओजोन क्षरण के शुरुआती संकेत 1957 में ही दिखाई देने लगे थे। मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एमआईटी) ने अपने इस नए अध्ययन में खुलासा किया है कि अगर आज जैसी उन्नत निगरानी तकनीकें पिछली सदी के मध्य में उपलब्ध होतीं, तो वैज्ञानिक ओजोन क्षरण के संकेत 1957 में ही पकड़ सकते थे। यानी, ओजोन छिद्र की खोज से करीब तीन दशक पहले ही इस सुरक्षात्मक परत में गिरावट शुरू हो चुकी थी। वैज्ञानिकों ने इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि ओजोन परत में शुरुआती गिरावट का पहला स्पष्ट संकेत अंटार्कटिका में नहीं, बल्कि उष्णकटिबंधीय क्षेत्र के ऊपरी समताप मंडल में दिखाई देता। सबसे चौंकाने वाली बात यह है कि इस शुरुआती नुकसान के पीछे क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सीएफसी) नहीं, बल्कि कार्बन टेट्राक्लोराइड नाम का एक औद्योगिक रसायन था। इस अध्ययन के नतीजे प्रतिष्ठित जर्नल प्रोसीडिंग्स ऑफ द नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज (पीएनएएस) में प्रकाशित हुए हैं। इसमें वैज्ञानिकों ने एक तरह का क्या होता अगर प्रयोग किया। उन्होंने कल्पना की कि यदि पिछले 100 वर्षों के दौरान भी आज जैसी उपग्रह तकनीक, वायुमंडलीय निगरानी और विश्लेषण के आधुनिक उपकरण मौजूद होते, तो ओजोन क्षरण का पहला संकेत कब, कहां और किस कारण दिखाई देता। इस सवाल का जवाब खोजने के लिए वैज्ञानिकों ने पिछले सौ वर्षों के दौरान वायुमंडल की रसायनिक बनावट को कंप्यूटर मॉडलों के जरिए दोबारा बनाया। उन्होंने 16 अलग-अलग मॉडल तैयार किए, जिनमें अलग-अलग अक्षांशों, ऊंचाइयों, मौसमीय उतार-चढ़ाव, ज्वालामुखी विस्फोटों और अल नीनो जैसे प्राकृतिक कारकों के असर को शामिल किया गया। इसके बाद इन मॉडलों में उन औद्योगिक रसायनों के ऐतिहासिक उत्सर्जन के आंकड़े जोड़े गए, जिनका इस्तेमाल 20वीं सदी में बड़े पैमाने पर हुआ था। इस दौरान उन्होंने यह समझने की कोशिश की कि वायुमंडल में जो बदलाव दिख रहे हैं, उनमें से कौन-से बदलाव प्राकृतिक कारणों और कौन-से इंसानी गतिविधियों की वजह से हो रहे हैं। यहीं से तस्वीर साफ होने लगी। विश्लेषण में पता चला कि इंसानी गतिविधियों से जुड़ा ओजोन क्षय का संकेत 1957 में ही उभरने लगा था। यह भी सामने आया कि ओजोन क्षरण का सबसे शुरुआती स्पष्ट संकेत अंटार्कटिका में नहीं, बल्कि उष्णकटिबंधीय क्षेत्र के ऊपरी समताप मंडल में दिखाई देता। वैज्ञानिकों के अनुसार, वहां प्राकृतिक उतार-चढ़ाव अपेक्षाकृत कम होते हैं, इसलिए इंसानी गतिविधियों से पैदा हुआ बदलाव अधिक साफ नजर आ सकता था। सबसे चौंकाने वाली बात यह है कि इस शुरुआती नुकसान के पीछे क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सीएफसी) नहीं थे, जिन्हें ओजोन क्षय का सबसे बड़ा दोषी माना जाता है। लेकिन नई स्टडी बताती है कि शुरुआती क्षय की कहानी कुछ और थी। वैज्ञानिकों के मुताबिक, कार्बन टेट्राक्लोराइड 1930 के दशक से ही ड्राई-क्लीनिंग और मशीनों की सफाई में चिकनाई हटाने वाले सॉल्वेंट के रूप में इस्तेमाल हो रहा था। बर्फ की गहराइयों से निकाले गए आइस कोर नमूनों में भी इसके निशान मिले, जिनसे पता चलता है कि 1940 के दशक से ही इसकी मात्रा वातावरण में बढ़ने लगी थी। यही रसायन ओजोन परत पर शुरुआती चोट कर रहा था। ओजोन परत पृथ्वी के लिए एक सुरक्षात्मक ढाल की तरह काम करती है। यह सूर्य से आने वाली हानिकारक पराबैंगनी (यूवी) किरणों को काफी हद तक रोक देती है। अगर यह परत कमजोर होती है, तो त्वचा संबंधी कैंसर, आंखों की बीमारियां, फसलों को नुकसान और समुद्री पारिस्थितिकी पर गंभीर असर पड़ सकता है। 1987 में मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल लागू किया गया, जिसके तहत क्लोरोफ्लोरोकार्बन और ओजोन को नुकसान पहुंचाने वाले दूसरे पदार्थों को चरणबद्ध तरीके से खत्म किया गया। इसी वैश्विक प्रयास का नतीजा है कि आज ओजोन परत में सुधार के शुरुआती संकेत दिखने लगे हैं। बता दें कि कार्बन टेट्राक्लोराइड का उपयोग दुनिया के कई हिस्सों में स्वास्थ्य और पर्यावरण पर पड़ने वाले असर को देखते हुए काफी हद तक बंद किया जा चुका है। लंबे समय तक इसके संपर्क में रहने से तंत्रिका तंत्र पर असर पड़ सकता है और इसे संभावित कैंसरकारी रसायन भी माना जाता है। मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल के तहत इसके उपयोग पर सख्त नियंत्रण लगाया गया, जिसके बाद वायुमंडल में इसकी मात्रा घटनी शुरू हो चुकी है। हालांकि साथ ही वैज्ञानिकों ने यह भी चेताया है कि यह मान लेना पर्याप्त नहीं कि खतरा पूरी तरह टल गया है। इसलिए यह सुनिश्चित करना भी हमारी जिम्मेदारी है कि वायुमंडल वास्तव में उसी तरह ठीक हो रहा है जैसा हम उम्मीद कर रहे हैं। देखा जाए तो यह अध्ययन सिर्फ अतीत का एक वैज्ञानिक रहस्य नहीं खोलता, बल्कि वर्तमान के लिए भी एक साफ संदेश देता है कि पर्यावरणीय संकट अक्सर हमारी नजरों में आने से बहुत पहले शुरू हो जाते हैं। इसलिए लगातार निगरानी, वैज्ञानिक समझ और वैश्विक सतर्कता ही हमारी सबसे बड़ी सुरक्षा है।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008